उत्तराखण्ड के लोकगीत (कुमाऊँ के परिप्रेक्ष्य में)

***डॉ0 (श्रीमती) आभा शर्मा**
****सुनीता कलौनी**

प्रस्तावना –

हिमालय की पावन देवभूमि में अवस्थित उत्तराखण्ड राज्य की संस्कृति अत्यधिक सुदृढ़ है। उत्तराखण्ड का संगीत अद्भुत और आकर्षक है। नृत्य, गीत एवं वाद्य यंत्रों की कलाओं में भी यह राज्य आदिकाल से अग्रणी रहा है। उत्तराखण्ड में वैदिक काल से ही देव आराधना से लेकर प्रत्येक संस्कार तथा दैनिक कार्यों में लोक गीतों का अत्यधिक महत्व रहा है। देवभूमि कहे जाने वाले उत्तराखण्ड में कई ऐसे प्रचलित लोक गीतों के रचनाकार और गायक विश्व प्रसिद्धि पा चुके हैं । जिनमें 'गिरदा', 'झुसिया दमाई', 'कबूतरी देवी' ने न केवल पूरे भारत में बल्कि विश्व में भी देवभूमि का नाम अलंकृत किया है।

कुमाऊँ में धान की रोपाई के समय लगने वाला 'हुड़कीबौल' धार्मिक अनुष्ठानों में गाया जाने वाला 'फाग' मंदिरों मे देव आराधना के लिये प्रसिद्ध 'जागर' वियोग का प्रसिद्ध 'न्यौली गीत' विभिन्न संस्कारों, सांस्कषतिक उत्सवों एवं पर्वों में गाये जाने वाले गीत 'झोड़ा', 'चांचरी' इत्यादि उत्तराखण्ड की अद्भुत लोक कलाओं का जीवन्त उदाहरण है। उत्तराखण्ड में नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार तथा विवाह संस्कार इत्यादि शोड्ष संस्कारों के अवसरों पर मंगलगीत अनिवार्य रुप से गाये जाते हैं। उत्तराखण्ड में भारत के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अधिक मेले लगते हैं। जो कहीं न कहीं उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति एंव लोकगीतों से सम्बन्धित होते हैं।

हुड़कीबौल –

'हुड़कीबौल' शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है। 'हुड़की' तथा 'बौल'। 'हुड़का' उत्तराखण्ड का एक प्रसिद्ध वाद्य यंत्र है तथा 'बौल' का अर्थ है बोल। अर्थात् हुड़की के साथ गाये जाने वाले गीत 'हुड़कीबौल' कहलाते हैं। 'हुड़कीबौल' का अर्थ है – हुड़के के साथ किया जाने वाला कार्य।

'हुड़कीबौल' एक श्रम गीत है। धान की रोपाई के समय इस गीत का प्रयोग किया जाता है। रोपाई में स्त्रियां सामूहिक रुप से गायन करती हैं। 'हुड़कीबौल' गायक को 'हुड़किया' कहा जाता है। सर्वप्रथम 'हुड़किया' गीत गाना आरम्भ करता है। उसके पश्चात् अन्य स्त्रियां उन गीतों की पुनरावृत्ति करते हुए गायन करती हैं। और इसी के साथ–साथ 'हलिया' (हल जोतने वाला) और 'बौसिया' (खेत तैयार करने वाला) पौंधे रोपने के लिये खेत को तैयार करता है (करते हैं)।

प्रथम खेत तैयार होते ही सर्वप्रथम 'पुतारियां' (पौंधे रोपने वाले), 'बौसिया' (खेत तैयार करने वाले), 'हलिया' (हल जोतने वाले) एंव बैलों को (पिठ्यां) टीका लगाते हैं। इसके पश्चात् 'पूते' (पौंधे) का एक गठ्ठा उठा कर सर्वप्रथम वहां के स्थानीय भूमि देवता के नाम अर्पित कर गीत को आरम्भ किया जाता है। तथा सर्वप्रथम 'हुड़किया' भगवान की अराधना करते हुए गीत आरम्भ करता है तथा पृथ्वी और आकाश के देवताओं को आमंत्रित कर इस ऋतु में फसल अच्छी होने का आशीर्वाद मांगता है।

''सैल दिया बिदौ हो, धरती माता।
गोठ गाई पेट भरी, घास दिया धरती माता।
कमाई में बरकत, राख्या धरती माता
दैणा होया धरती माता..... (हौ हौ)।।'' [1]

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, लक्ष्मण सिंह महर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़–262502 (उत्तराखण्ड)
**शोधार्थिनी, लक्ष्मण सिंह महर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़–262502 (उत्तराखण्ड)

इसके पश्चात् कथा आरम्भ होती है। 'पुतारियां' पौंधे रोपते हुए पीछे की तरफ आती रहती हैं। और 'हुड़किया' बीच–बीच में (छाल हौ) कह कर 'पुतारियों' का उत्साह–वर्धन करता है। दोपहर के समय सभी लोग जलपान कर आराम करते हैं। कार्य समाप्ति की संध्या बेला पर कथा गायक सुभाशीर्वचनों से गीत का समापन करते हुए भगवान से प्रार्थना करता है। और इस कार्य के कुशल समापन हेतु भगवान को धन्यवाद देता है एवं अन्त में समस्त कार्यकर्ता – 'बैलों', 'पुतारियों', 'हलिया', 'बियारों' को 'हुड़किया' आशीर्वचन देता है। कार्य के साथ ही कथा व गीतों का भी समापन हो जाता है।

जागर –

उत्तराखण्ड देवभूमि है और यह मान्यता है कि यहां पर कण–कण में देवी–देवता निवास करते हैं। आस्था के प्रतीक उत्तराखण्ड में चारों धाम (बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री) अवस्थित हैं। पुराणों के अनुसार शिव का ससुराल हरिद्वार कनखल में माना गया है। वैदिक काल से ही सभी देवी–देवताओं का निवास स्थान उत्तराखण्ड में ही माना गया है।

इन सभी देवी–देवताओं का हमारी संस्कृति में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तराखण्ड में देवी–देवता किसी पवित्र षरीर के माध्यम से हर कष्ट का निवारण करने के लिये हमारे पास आते हैं और इसी प्रक्रिया को 'जागर' कहा जाता है। 'जागर' कुमाऊँ में कथा के रुप में प्रचलित है। कई रातों तक जागकर ईश्वर की वंदना करने के कारण इसे जागर नाम दिया गया है। 'जागर' का अर्थ है एक अदृश्य आत्मा।

देवी–देवताओं को जागृत करके किसी व्यक्ति के षरीर मे अवतरित करना तथा इस कार्य के लिये 'डंगरिया' (जागर लगाने वाला) जागर लगाता है। इसमें कांसे की थाली तथा हुड़के का प्रमुख रुप से प्रयोग किया जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र मे किसी अनिष्ठ से बचने एंव मनोकामना पूर्ण होने पर एक या एक से अधिक परिवारों द्वारा जागर लगाने की परम्परा है। 'जागर' के लिये 'चैत्र' एंव 'माघ' के महीने पवित्र माने जाते हैं।

'जागर' कई प्रकार की होती है–

1. एक दिन की जागर।
2. चार दिन के कार्यक्रम चौरास।
3. बाईस दिन के कार्यक्रम को बैसी कहते हैं।

जागर दो कारणों के लिये लगायी जाती है। एक जागर जो देवी देवताओं की अराधाना के लिये। दूसरा जागर किसी मृत आत्मा की शांति के लिये।

इसमें मुख्य रुप से तीन लोग होते हैं–

'जगरिया'– 'जगरिया' उस व्यक्ति को कहा जाता है। जो अदष्य आत्मा को जागृत करता है और इसका कार्य देवता के जीवन की प्रमुख घटनाओं को वाद्य–यंत्रों के साथ एक विशेष शैली में गाकर देवता को जागृत कर उसका अवतरण 'डंगरिया' के शरीर में कराना होता है। 'जगरिया' को खान–पान का भी विशेष ध्यान देना होता है।

'डंगरिया'– 'डंगरिया' उस व्यक्ति को कहा जाता है जिसके शरीर में देवताओं का अवतरण होता है। इसे डगर (रास्ता) बताने वाला माना जाता है, इसलिए इसे 'डंगरिया' कहते है। जब 'डंगरिया' के शरीर में देवता का अवतरण होता है तो उसका पूरा शरीर कम्पन करता है और वह सभी उपस्थित लोगों के दुःख का समाधान करता है। 'डंगरिया' को समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'जागर' के समय 'डंगरिया' को गौ–मूत्र, गंगाजल और गाय के दूध का सेवन कर शुद्ध होकर ही धुनी (धूणी) में प्रवेश करना पड़ता है।

'स्योंकार स्योंनाई'– जिस घर में 'जागर' लगाया जाता है उस घर के मुखिया को 'स्योंकार' तथा उसकी पत्नी को 'स्योनाई' कहा जाता है। यह अपनी समस्या देवताओं को बताते हैं। और देवता के सामने 'अक्षत' (चावल के दाने) रखते हैं। देवता 'अक्षत' के दानों को हाथ में लेते है और उसकी समस्या का समाधान बताते हैं।

फाग –

शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले मंगल–गीतों को 'फाग' कहते हैं। मंगलगीतों का सीधा सम्बन्ध संस्कारों से माना गया है। विभिन्न संस्कारों में मंगलगीत गाये जाते हैं। अतः इसे 'संस्कारगीत' भी कहा जाता है। कुमाऊँ में मंगलगीतों को 'शगुन आखर' भी कहा जाता है। अर्थात् शगुन के लिए या शगुन के समय गाया जाने वाला गीत। कई धार्मिक स्थानों देवी–देवताओं की गाथाओं को भी 'फाग' के रुप में गाया जाता है। 'फाग' प्रमुखतया नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों पर गाया जाता है।

'फाग' गायन में दो या दो से अधिक गायक होते हैं। जो धीरे–धीरे गीत गाते हैं। किसी भी मांगलिक कार्य की शुरुआत 'फाग' से ही होती है। बुजुर्ग महिलाएँ एक विशेष लय से साथ इसे गाती हैं। फाग महिलाओं द्वारा 'कोरस' में गाये जाते हैं। 'फगारिया' (फाग गाने वाली महिलाएँ) का समाज में अत्यधिक सम्मान होता है। पंडित जी के मन्त्रोच्चारण के साथ–साथ 'फाग' की ध्वनि कर्णप्रिय लगती है।

प्रत्येक संस्कार में अलग–अलग 'फाग' गाया जाता है। जैसे – 'उपनयन' संस्कार में सर्वप्रथम गणेश पूजा के समय 'फाग' होगा। जिसमें भगवान गणेश की वन्दना की जायेगी। और उसके बाद प्रत्येक क्रिया के लिये अलग–अलग 'फाग' गाया जाता है।

''पुज बाली गणेश, ठुल छन देवता
पियेला पीठा थेले, पुज बाली गणेश कलश।।'' [2]

'फाग' केवल महिलाओं द्वारा ही गाया जाता है। इन गीतों में लोकवेद की रीति का अनोखा समन्वय देखने को मिलता है।

''खै लियो बौज्यू, मनै की इछिया जो।
खै लियो बौज्यू, बासमती को भात।
उरद की दाल, घिरत भुटारो दाख दाड़िमा।
छौलिड़ बिजौरा कैली कचौरी, लाखी को सीकरा।।'' [3]

विवाह संस्कार में वर–पक्ष में सौल पथाई, पुर्वांग, रतेली आदि के लिये अलग–अलग गीत गाये जाते हैं। जबकि कन्या पक्ष की ओर धुलर्ग, श्रृंगार, कन्यादान, बारात विदाई के अलग–अलग 'फाग' गाये जाते हैं। बारात विदाई का 'फाग' अत्यन्त मार्मिक होता है। जो प्रत्येक व्यक्ति की आंखों को आंसुओं से भर देता है।

''छाज में बैठनिया, गिडुवा खेलनिया,
हमरी लाडुलि चली ससुराल।
इजु की गोदी में बैठनिया,
बाबु की लाडुली बेटी चली ससुराल,
हिल–मिल भइया की लाडली बैना चली ससुराल।।'' [4]

न्यौली –

उत्तराखण्ड में गाये जाने वाले गीतों की पद्धतियों में से एक पद्धति 'न्यौली' है। 'न्यौली' शब्द की उत्पत्ति उत्तराखण्ड में पायी जाने वाली एक ऐसे पक्षी से हुयी है, जो कोयल के समान काले रंग का होता है। जिसे यहां की स्थानीय भाषा में

'न्यौली' पक्षी कहा जाता है। इसके विषय में यह माना जाता है कि यह अपने प्रियतम के वियोग में इधर–उधर घने जंगलों में कुछ कहते हुये तथा गीत गाते हुये भ्रमण करती रहती है। इन गीतों में 'न्यौली' पक्षी के गीतों की तरह ही वियोग की भावना होने के कारण ही इन गीतों को 'न्यौली' नाम दिया गया।

'न्यौली' शब्द का मुख्य अर्थ–नवेली अथवा नया है। अर्थात किसी गीत में नये छंदों का प्रयोग होना भी इस नाम को सार्थक करता है। 'न्यौली' घने जंगलों में अत्यन्त मन्द धुन में गाया जाने वाला गीत है। इस गायन पद्धति में आरोह तथा अवरोह की अत्यधिक विशिष्टता पायी जाती है।

''गैला पातल न्यौली बासन्छी
जन बासै न्यौली उदासी लागंच्छी।।'' [5]

'न्यौली' केवल प्रेमी या प्रिया के वियोग के वर्णन तक ही सीमित नहीं है। अपितु इसमें भाई–बहन, माता–पिता तथा प्रकृति या प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन भी देखने को मिलता है।

''अस्कोट दमुवां बाज्या, धारचूला में तुरी।
म्यार घरा बाटा आया, पकै रुलो पुरी।।'' [6]

इन गीतों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसमें ऋतु वर्णन, नव–वधू का दुःख, जाति प्रथा का वर्णन एवं अन्य सामाजिक समस्याओं का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली रुप से प्रस्तुत किया गया है।

'न्यौली' 14 वर्णों का एक मात्रिक छन्द है। इसे मधुमाण सांरग तथा दुर्गा रागों के स्वरों में भी गाया जाता है।

''कुर्त सिणो मसीन में, धोति बजार की,
दिलै सुवा एकि हुंछि, माया हजार की।।'' [7]

चांचरी –

'चांचरी' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'र्चचरी' शब्द से हुयी है। चर्चरी, इस शब्द का उपयोग श्री हर्ष ने अपनी नाटिका रत्नावली में किया[8] है। अर्थात यह गीत तथा नृत्य का एक समान रुप है। कुमाऊँ में माघ महीने की चाँदनी रात[9] में स्त्री–पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले गीतों की एक विशिश्ट शैली है। अल्मोड़ा, बागेश्वर, सोमेश्वर आदि स्थानों में इनका विशेष प्रचलन है। विभिन्न संस्कारों एवं त्यौहारों के अवसर पर स्त्री तथा पुरुषों द्वारा गीत गाया जाता है। इसमें स्त्री तथा पुरुष गोल घेरा बनाकर हाथ जोड़कर गीत गाते हैं। मुख्य गायक गोलाकार घेरे में बीच में हुड़की बजाते हुये नृत्य करता है। मुख्य गायक एक या एक से अधिक भी हो सकते हैं। 'चांचरी' में समस्त गायक गोलाकार आकृति में घूमकर पद संचालन करते हुये गीत गाते हैं।

''छमा पिनुरी कर धुरा देवी छम,
छमा पड़ि गो बरफ देवी छम,
छमा दैण हये भगवती देवी छम,
छमा सबुँ की देवी छम..... [10]

इस नृत्य गीत को 'झोड़ा' भी कहा जाता है। स्त्रियों तथा पुरुषों द्वारा गायी जाने वाली चंचरी में कोमलता होती है। चंचरी के साथ बजने वाले वाद्य–यन्त्रों में कहीं 'ढोलक' कहीं 'हुड़का' बजाया जाता है। मुख्य गायक के द्वारा गाये गये गीतों की पंक्तियों को वृत्त (गोल घेरे) के एक छोर के व्यक्ति गाते हैं तथा दूसरे छोर के व्यक्ति उसकी पुनरावृत्ति करते हैं।

चांचरी प्रश्नोत्तर के रुप में गाया जाने वाला नृत्य गीत है। जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका को तथा भिना (जीजा) अपनी साली को अनेक प्रलोभनों को देते हुए गीत गाता है चंचरी में मनोरंजन तथा आनन्द की प्रमुखता होती है।

''आहा खोल दे माता खोल भवानी धरम केवाड़
आहा रंग–रंगीला फूल ल्यायु त्यारा दरबारा ।। '' [11]

झोड़ा –

'झोड़ा' शब्द की उत्पत्ति 'जोड़ा' शब्द से हुयी है। जिसका अर्थ है 'समूह' क्योंकि वृत्ताकार समूह बनाकर इसे गायन कला का रुप दिया जाता है। समूह में गाये जाने के कारण इसे सामूहिक गीत भी कहा जाता है। स्त्री तथा पुरुष दो भागों में विभक्त होकर 'चांचरी' के समान ही इन गीतों में भी घूमकर पद संचालन करते हुये गीत गाते हैं।

झोड़ा के मुख्यतः दो रुप पाये जाते हैं–

1. मुक्तक एवं 2. प्रबन्धात्मक झोड़े

मुक्तक झोड़े –

विभिन्न पर्वो में गाये जाने वाले गीतों को 'मुक्तक' गीत कहा जाता है। इसे प्रायः समूह में ही गाया जाता हैं। इसमें समूह के व्यक्तियों को दो भागों में विभक्त किया जाता है। इनमें जोड़े बनाकर हाथ जोड़कर तथा पद संचलन करते हुए गीत गाया जाता है। चांचरी के समान ही मुख्य गायक गीत गाता है। समूह की एक पंक्ति गीत गाती है तथा दूसरी पंक्ति के व्यक्ति इसकी पुनरावृत्ति करते हैं। 'मुक्तक झोड़े' में 'हुड़के' का प्रयोग वाद्य यन्त्र के रुप में किया जाता है।

प्रबन्धात्मक झोडे .–

प्रबन्धात्मक झोड़े धार्मिक गीतों से सम्बन्धित हैं। इन गीतों में देवी तथा देवताओं के प्रति आस्था के भाव को प्रदर्शित किया जाता है तथा दैवीय शक्तियों के विशेष कार्यों का उल्लेख किया जाता है। इसमें 'ढोल–नगाड़ों' का वाद्य यन्त्रों के रुप में प्रयोग किया जाता है।

इन गीतों में मनोरंजन के साथ–साथ सांस्कृतिक महत्व को भी प्रतिपादित किया गया है। इसमें 'मुक्तक' तथा 'प्रबन्धात्मक' गीतों के रुप में विभिन्न उत्सवों तथा देवी–देवताओं के गीतों का सुन्दर उल्लेख किया गया है।

उत्तराखण्ड के लोकगीत (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में)

उत्तराखण्ड में लोकगीतों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करने से पूर्व हमें इसके अतीत का भी अध्ययन करना चाहिये। प्राचीन काल में लोकगीत और नृत्यों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के निजी कार्यों से रहा है। प्राचीन काल में आजीविका का मुख्य साधन कृषि होने के कारण लोकगीतों को भी अत्यधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु वर्तमान में स्थिति परिवर्तित हो चुकी है। ग्रामीण लोग भी जीविकोपार्जन के लिये शहरों की ओर पलायन करने लगे हैं। जिससे लोगों का लोकगीतों की ओर रुझान कम होने लगा है।

हमारे ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश युवा जीविकोपार्जन के लिये महानगरों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। अब ग्रामीण जीवन मात्र कृषि पर आश्रित नहीं रह गया है। क्योंकि अधिकांश युवा जीविकोपार्जन के लिये शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांशतः प्रौढ़, पुरुष तथा महिलाएं ही रह गए हैं। तथा उन्हें भी अपने बच्चों द्वारा धन की प्राप्ति हो रही है। तो अब वे मेहनत से बचने के लिए कुछ मजदूरों को कृषि कार्य में लगाकर निश्चिन्त हो जाते हैं। जिससे यह प्राचीन परम्परा प्रायः लुप्त हो गयी है।

वर्तमान में लोकगीतों की स्थिति को सुधारने के लिए हमें स्वयं से ही प्रारम्भ करना चाहिये। जब तक हम स्वयं जागरुक नहीं होंगे हम लोगों में लोकगीतों के प्रति जागरुकता प्रसारित नहीं कर पायेंगे। उत्तराखण्ड की इस लोकगीत परम्परा को आगे बढ़ाने हेतु हमें भारत के अन्य प्रांतों यथा पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, हिमांचल तथा विदेशी (पाश्चात्य देशों) से भी सीख लेनी चाहिए कि वह अपनी संस्कृति का कितना सम्मान करते हैं। जो कि हर नागरिक की प्राथमिकता होनी चाहिए। वर्तमान सरकार द्वारा लोकगीत, लोकगायक एवं लोकसाहित्य से जुड़े व्यक्तियों को पेंशन देने का एक सराहनीय कार्य किया गया है। इसके साथ ही सरकार को गांव से होने वाले पलायन को रोकने का प्रयास भी करना चाहिये। क्योंकि अप्रत्यक्ष रुप से लोकगीतों का सम्बन्ध गांवों के रीति–रिवाजों, कार्यों एवं संस्कृति से सम्बन्धित है।

प्राचीन समय में मनोरंजन के साधन प्राप्त नहीं होने से व्यक्ति अपना मनो–विनोद इन्हीं गीतों से किया करते थे। ग्रामीण क्षेत्र में लोग अनेक सांस्कृतिक उत्सवों को मनाने के लिए शहरों से अपने ग्राम को प्रस्थान करते थे तथा सभी लोग आपस में मिलते–जुलते थे तथा सभी में आपसी सौहार्द बना रहता था।

आधुनिक समय में मानव की जीवन–शैली में परिवर्तन के साथ–साथ अब सभी घरों में दूरदर्शन, संगणक (कम्प्यूटर), चलवाणी (मोबाइल), चलचित्रों का प्रचलन हो गया है। इस व्यस्तता भरे जीवन में व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि व्यक्ति के जीवन में लोकगीतों का महत्व कम हो गया है। ये लोकगीत मंचीय तथा कल्पनामात्र रह गये हैं। जिससे लोकगीत विलुप्ति के कगार पर पहुंच गये हैं। आज इन्हें पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। जिससे हमारी भावी पीढ़ी इस अनुपम धरोहर से विस्मृत न रह जाए।

सन्दर्भ सूची –

श्री हीरा बल्लभ गहतोड़ी जी के सौजन्य से।

'मंगलगीत', श्रीमती माया भट्ट, पृष्ठ – 7।

कुमांऊनी भाषा साहित्य एवं संस्कृति– डॉ0 देवसिंह पोखरिया, पृष्ठ – 52।

श्रीमती कमला जी के सौजन्य से निवासी पिथौरागढ़।

कुमांऊ के लोकसाहित्य – डॉ0 त्रिलोचन पाण्डे।

न्यौली संग्रह – डॉ0 देवसिंह पोखरिया, पृष्ठ – 197।

डॉ0 देवसिंह पोखरिया जी के सौजन्य से।

रत्नावली – श्री हर्ष, प्रथम अंक, पृष्ठ – 37।

उत्तराखण्ड एक समग्र अध्ययन – श्री केशरीनन्दन त्रिपाठी, पृष्ठ – 208।

कुमांऊनी भाषा साहित्य एवं संस्कृति– डॉ0 देवसिंह पोखरिया, पृष्ठ – 37।

श्री सुरेश सुरीला जी के सौजन्य से।